विशेष: कर्नाटक: राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियाँ

संदर्भ एवं पृष्ठभूमि

हाल ही में संपन्न हुए कर्नाटक विधानसभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला। भाजपा 104 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी बनी, तो कांग्रेस को 78 और जेडीएस को 38 सीटें मिलीं। सरकार बनाने के लिये कम-से-कम 113 सीटों की आवश्यकता है। पर्याप्त संख्या बल नहीं होने के बावजूद भाजपा ने प्रदेश के राज्यपाल वजुभाई वाला से मुलाकात कर सरकार बनाने का दावा किया, तो वहीं कांग्रेस के समर्थन के बाद जेडीएस के कुमारस्वामी ने भी गठबंधन सरकार बनाने के लिये राज्यपाल से मुलाकात की। सबकुछ राज्यपाल पर निर्भर था और अंततः उन्होंने स्वविवेक से लिये गए निर्णय में सबसे बड़े दल के रूप में भाजपा को सरकार बनाने के लिये कहा और बहुमत साबित करने के लिये 15 दिन का समय दिया। 17 मई की सुबह बी.एस. येद्दियुरप्पा को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई गई।

गठबंधन सरकारों के दौर में राज्यपाल की भूमिका

संघीय व्यवस्था में राज्यपाल राज्य और कार्यपालिका के औपचारिक प्रमुख के रूप में काम करते हैं, विशेषकर तब जब राजनीतिक उथल-पुथल होती है। ऐसी स्थिति में जहाँ दो या अधिक दल सरकार बनाने का दावा पेश कर रहे हों, राज्यपाल को कानूनी एवं संवैधानिक पक्षों को ध्यान में रखते हुए निर्णय करना होता है।

पहले राज्यपालों के मामले में माना जाता था कि यह एक शोभा का पद है और इस पद पर नियुक्ति राजनीतिक आधार पर होती है तथा संघीय व्यवस्था में राज्यपाल केंद्र के प्रतिनिधि होते हैं। लेकिन बदली हुई परिस्थितियों में गठबंधन सरकारों के इस दौर में राज्यपालों की भूमिका बेहद महत्त्वपूर्ण हो गई है।

राज्य के राज्यपाल को अधिकांश मामलों में सरकार की सहायता और परामर्श से ही काम करना होता है, लेकिन दिल्ली जैसे केंद्रशासित राज्यों की स्थिति कुछ अलग है जहाँ उपराज्यपाल को किसी भी राज्य के राज्यपाल से अधिक अधिकार प्राप्त हैं और उसे हमेशा मंत्रिपरिषद की सहायता और परामर्श से काम नहीं करना होता।

संघात्मक संविधान है देश में

भारत का संविधान संघात्मक है। इसमें संघ तथा राज्यों के शासन के संबंध में प्रावधान किया गया है। संविधान के भाग-6 में राज्य शासन के लिये प्रावधान है। यह प्रावधान जम्मू-कश्मीर को छोड़कर सभी राज्यों पर लागू होता है, क्योंकि विशेष स्थिति के कारण उसका अलग संविधान है। जैसे देश की कार्यपालिका का प्रमुख राष्ट्रपति होता है, उसी तरह राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख राज्यपाल होता है, जो मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

राज्यपाल की प्रमुख संवैधानिक शक्तियाँ

- अनुच्छेद 153 में व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक राज्य में एक राज्यपाल होगा
- अनुच्छेद 154 कहता है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी
- अनुच्छेद 155 में राज्यपाल की नियुक्ति का वर्णन है
- अनुच्छेद 156 में राज्यपाल की पदावधि निर्धारित की गई है
- अनुच्छेद 161 में राज्यपाल को मिली क्षमादान आदि शक्तियों का उल्लेख है
- अनुच्छेद 163 के अनुसार राज्यपाल के कार्यों में सहायता एवं सुझाव देने के लिये राज्यों में एक मंत्रिपरिषद एवं इसके शीर्ष पर मुख्यमंत्री होगा, लेकिन राज्यपाल के स्वविवेक संबंधी कार्यों में वह मंत्रिपरिषद के सुझाव लेने के लिये बाध्य नहीं होगा
- अनुच्छेद 164(1) में मुख्यमंत्री की नियुक्ति का अधिकार राज्यपाल को दिया गया है
- अनुच्छेद 213(1) में राज्य विधायिका के सत्र में नहीं रहने पर राज्यपाल द्वारा अध्यादेश जारी करने की शक्ति का वर्णन है

स्वविवेकीय शक्तियाँ

- कुछ मामलों में राज्यपाल को विवेकाधिकार दिया गया है और ऐसे मामलों में वह मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना कार्य करता है।
- विदित हो कि भारतीय संविधान में केवल राज्यपाल को ही स्वविवेक की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, लेकिन संविधान में इन शक्तियों को परिभाषित नहीं किया गया है और इन्हें न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- संविधान के अनुच्छेद 163 के तहत राज्यपाल के पास कुछ विवेकाधीन शक्तियाँ होती हैं तथा न्यायालय इन शक्तियों पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा

सकता।

- राज्यपाल जैसे संवैधानिक पद पर आसीन होने के बाद किसी भी व्यक्ति पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।
- 1976 में हुए 42वें संविधान संशोधन के बाद राष्ट्रपति के लिये मंत्रियों की सलाह की बाध्यता तय कर दी गई, लेकिन राज्यपाल के लिये इस तरह का कोई उपबंध नहीं है।

नज़ीर माना जाता है बोम्मई फैसला

सर्वोच्च न्यायालय के कई ऐसे फैसले हैं, जिनका समाज और राजनीति पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इन्हीं में से एक है 11 मार्च, 1994 को दिया गया राज्यों में सरकारें भंग करने की केंद्र सरकार की शक्ति को कम करने वाला ऐतिहासिक फैसला।

- सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय ने केंद्र सरकार द्वारा अनुच्छेद 356 के व्यापक दुरुपयोग पर विराम लगा दिया।
- धारा 356 के गलत इस्तेमाल को रोकने के लिये दिये गए इस फैसले को बोम्मई जजमेंट के नाम से जाना जाता है।
- कर्नाटक के मुख्यमंत्री एस.आर. बोम्मई के फोन टैपिंग मामले में फँसने के बाद तत्कालीन राज्यपाल ने उनकी सरकार को बर्खास्त कर दिया था, जिसके बाद यह मामला सर्वोच्च न्यायालय में पहुँचा था।
- नज़ीर माने जाने वाले इस फैसले में न्यायालय ने कहा, "किसी भी राज्य सरकार के बहुमत का फैसला राजभवन की जगह विधानमंडल में होना चाहिये। राष्ट्रपति शासन लगाने से पहले राज्य सरकार को शक्ति परीक्षण का मौका देना होगा।"
- इस मामले में 9-सदस्यीय संविधान पीठ ने राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने के संदर्भ में दिशा-निर्देश तय किये।

7 प्रमुख दिशा-निर्देश

न्यायालय के इस फैसले में निम्नलिखित 7 सात बिंदु बहुमत का दृष्टिकोण बनकर उभरे:

1. अनुच्छेद 356(1) के तहत राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा न्यायिक समीक्षा के योग्य है
2. अदालत यह जाँच सकती है कि राष्ट्रपति शासन की घोषणा क्या किसी सामग्री पर आधारित है और क्या वह सामग्री प्रासंगिक है
3. चुनौती दिये जाने की दशा में यह जिम्मेदारी केंद्र सरकार की है कि वह संबंधित सामग्री की प्रासंगिकता सिद्ध करे
4. अनुच्छेद 74 (2) में राष्ट्रपति के समक्ष सामग्री की जाँच-पड़ताल पर कोई प्रतिबंध नहीं है और राष्ट्रपति इस संदर्भ में तब तक कोई अपरिवर्तनीय निर्णय नहीं ले सकते, जब तक कि राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा को संसद अपनी मंजूरी न प्रदान कर दे
5. यदि अदालत उद्घोषणा को अवैध पाती है तो उसे पूर्व स्थिति बिहाल करने का अधिकार है अर्थात् वह विधानसभा और मंत्रिमंडल को बहाल कर सकती है, भले ही संसद ने उद्घोषणा को अपनी मंजूरी प्रदान कर दी हो
6. अदालत के पास अंतरिम राहत देने का भी अधिकार है अर्थात् वह नए चुनावों पर रोक लगा सकती है
7. पंथनिरपेक्षता संविधान के मूल ढाँचे का एक अंग है।

- यह भारत के लोकतांत्रिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह तय कर दिया कि बहुमत होने-न होने का फैसला सदन में होना चाहिये, कहीं और नहीं।
- बोम्मई जजमेंट का असर तब देखने को मिला था जब 1997 और 1998 में तत्कालीन राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने धारा 356 के इस्तेमाल से उत्तर प्रदेश और बिहार की सरकारों को बर्खास्त करने के केंद्र के प्रस्ताव को वापस भेज दिया था।
- बोम्मई जजमेंट के बाद विधानसभाओं को भंग करने का सिलसिला तो लगभग खत्म हो चुका है, लेकिन राज्यपालों के माध्यम से अपनी पसंद की सरकार बनवाने का प्रयास केंद्र की तरफ से जारी है।

(टीम दृष्टि इनपुट)

राज्यपालों की भूमिका पर समितियों व आयोगों की अनुशंसाएँ

केंद्र-राज्यों के संबंधों पर अब तक तीन आयोग और दो समितियाँ गठित की जा चुकी हैं, लेकिन इसके बावजूद राज्यपाल का पद विवाद से बाहर नहीं आ पाया है। 1966 में प्रशासनिक सुधार आयोग, 1969 में राजमन्नार समिति, 1970 में भगवान सहाय समिति और 1988 में सरकारिया आयोग तथा 2011 में पुंछी आयोग ने राज्यपालों की भूमिका को लेकर कई प्रकार की सिफारिशें दी थीं।

- राज्यपाल की नियुक्ति मुख्यमंत्री के परामर्श से हो इसके लिये संविधान के अनुच्छेद 155 में संशोधन किया जाए।
- राज्यपाल द्वारा अपने स्वविवेक के अधीन प्रयोग की जाने वाली शक्तियों का पर्याप्त स्पष्टीकरण किया जाना चाहिये।
- इस संवैधानिक प्रावधान को तत्काल निरस्त कर देना चाहिये कि मंत्रिपरिषद राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करेगी।
- विधानसभा में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राज्यपाल को विधानसभा का अधिवेशन बुलाना चाहिये और अधिवेशन में बहुमत से चुने गए व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त करना चाहिये।
- राज्यपाल के पद पर नियुक्त किये जाने वाला व्यक्ति किसी दूसरे राज्य से होना चाहिये।
- राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया जाने वाले व्यक्ति ने राजनीति, विशेषकर उस राज्य की राजनीति में अधिक भाग न लिया हो ।
- जिस राज्य में विपक्षी दल की सरकार हो वहाँ केंद्र में शासक दल के किसी व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जाना चाहिये।

सरकारिया आयोग

- 1980 में गठित किये गए सरकारिया आयोग ने 1988 में 1600 पेज की अपनी अंतिम रिपोर्ट सरकार को सौंपी थी, जिसमें केंद्र-राज्य संबंधों को लेकर बिंदुवार 247 सिफारिशें की गई थीं।
- सरकारिया आयोग की केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में जो अनुशंसाएं हैं, उसके भाग-1 और अध्याय-4 में यह स्पष्ट किया गया है कि राज्यपाल का पद एक स्वतंत्र संवैधानिक पद है, राज्यपाल न तो केंद्र सरकार के अधीनस्थ है और न उसका कार्यालय केंद्र सरकार का कार्यालय है।

अतः राज्यपाल के लिये निष्पक्ष होना ही काफी नहीं है, उसे ऐसा दिखना भी चाहिये। संविधान सभा में जब राज्यपाल पद को लेकर बहस हुई थी, तो तय हुआ था कि उसे इंस्ट्रूमेंट ऑफ इंस्ट्रक्शन दिया जाएगा, जिसके अनुरूप ही वे कार्य करेंगे, लेकिन बाद में इसे हटा दिया गया। इसीलिये अभी राज्यपाल को विवेक के आधार पर काम करना होता है। ऐसे में राज्यपाल पद की गरिमा को बहाल करने के लिये सरकारिया एवं पंछी आयोगों के सुझावों को लागू करना आवश्यक है।

निष्कर्ष: कर्नाटक विधानसभा चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिलने और सरकार बनाने के समर्थन तथा आरोपों के बीच राज्यपाल पद का मुद्दा एक बार फिर बहस के केंद्र में आ गया है। अभी कुछ समय पूर्व मणिपुर, मेघालय और गोवा में राज्य सरकारों का गठन होते समय भी इन राज्यों के राज्यपालों की भूमिका चर्चा में रही थी। ऐसे में यह ज़रूरी हो जाता है कि राज्यपाल की भूमिका पर बहस होनी चाहिये क्योंकि यह संवैधानिक पद है और इस पर आसीन व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे अपनी राजनीतिक निष्ठाओं को भूलकर निष्पक्ष ढंग से काम करें।

लेकिन ऐसा होता नहीं है, इसका प्रमुख कारण यह है कि सभी राजनीतिक दल सत्ता में रहते हुए इन पदों का अपने हितों की पूर्ति के लिये इस्तेमाल करते हैं और विपक्ष में होने पर इस प्रकार के दुरुपयोग का विरोध करते हैं। केंद्र में जिस भी दल की सरकार रही हो, राज्यपालों के जरिए राज्यों में विपक्षी दलों को सरकार बनाने से बाधित करने या अस्थिर करने के प्रयास किए जाते रहे हैं।

आज राज्यों के राजभवन उन नेताओं की आरामगाह बन गए हैं जो या तो चुनाव हार गए हैं या जो इतने बुजुर्ग हो चुके हैं कि चुनाव लड़ने के काबिल ही नहीं रहे। पिछले कुछ दशकों से राज्यपालों की नियुक्ति कुछ इस प्रकार से की जाती रही है कि राज्यों में शासन करने वाले विरोधी राजनीतिक दल के खिलाफ वे केंद्र के सत्ताधारी दल के प्रतिनिधि के रूप में काम करें। इसी प्रकार राज्यपालों के मामले में भी राजनीतिक दलों के बीच आम राय बनाई जानी चाहिये, क्योंकि हर दल को किसी-न-किसी समय राज्यपालों के पक्षपातपूर्ण आचरण के कारण नुकसान झेलना पड़ता है।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/karnataka-discretionary-powers-of-the-governor